Multidisciplinary International Magazine
(Peer-Reviewed)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
Volume 6, Issue 68, December 2020

JANKRITI जनकृति

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
(विशेषज्ञ समीक्षित)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
वर्ष 6, अंक 68, दिसंबर 2020

कलि कथा वाया बाइपास में भूमंडलीकरण का प्रभाव एवं प्रतिरोध

सुगता ए आर
पीएचडी. शोध छात्र,हिंदी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोच्ची-682022,केरल
ईमेल : sugathaar1992@gmail.com
Phone No: 8113033625

सारांश

समकालीन हिंदी कथाकारों में अलका सरावगी की ख़ास पहचान है। अपनी ख़ास सृजनधर्मिता के कारण उन्हें हिन्दी साहित्यिक जगत में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। अलका सरावगी का प्रथम एवं चर्चित उपन्यास है 'कलिकथा वाया बाइपास'। इस उपन्यास के कारण हिन्दी साहित्य-जगत में अलका जी को एक सशक्त उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली। उपन्यास में लगभग डेढ़ सौ साल के मारवाड़ी समाज,भारत के इतिहास,राजनीतिक एवं सामाजिक विकास को भी रेखांकित किया गया है। उपन्यास के केंद्र में किशोरबाबू और उनका परिवार एवं मारवाड़ी समाज के साथ उनके दोस्त शांतनु एवं अमोलक है। उपन्यास में स्वाधीनतापूर्व तथा स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के भारत का सामाजिक,सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिवेश प्रस्तुत किया गया है। किशोरबाबू के ज़रिए भूमंडलीकरण के चलते भारत के बदलते परिदृश्य एवं प्रतिरोध को हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। इस शोध पत्र में 'कलिकथा वाया बाइपास' में चित्रित भूमंडलीकरण के प्रभाव एवं प्रतिरोध का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द: *अलका सरावगी, कलिकथा वाया बाईपास, भूमंडलीकरण, नवउपनिवेशवाद, बाजार, साम्प्रदायिकता*

भूमिका

अलका सरावगी ने अपनी तमाम रचनाओं के माध्यम से नवउपनिवेशवाद का प्रतिरोध व्यक्त किया है। नवउपनिवेशवाद वास्तव में उपनिवेशवाद का नया रूप ही है। डॉ. एन.मोहनन के अनुसार "नवउपनिवेशवाद वह व्यवस्था है जिसमें पूर्व उपनिवेशी ताकतें अपने पूर्व उपनिवेशितों पर वर्चस्व बनाये रखने की कोशिश करती हैं।"[1] सदियों तक हम अंग्रेजों के गुलाम रहे। बाद में अंग्रेजों ने हमें आज़ादी दे दी ।लेकिन आज भी हम मानसिक रूप से अंग्रेजों के गुलाम ही हैं। किशोरबाबू के बेटे-बेटीयाँ इस मानसिकता के शिकार हैं- " यहाँ सबके अपने – अपने सपने हैं, किशोर देखता है, पर कहीं वे सारे सपने एक जगह जुड़ जाते हैं। कारण यह है कि शत्रू का चेहरा साफ है- उसके

चले जाने से ही एक नया सूरज उगेगा। यह तो किशोर को बाद में जाकर कई दशकों के बाद अहसास होता है कि जब शत्रू का चेहरा खोजने पर अपना ही चेहरा शीशे में नजर आने लगता है तो सारे सपने धुँधला जाते हैं। यहाँ तक कि कोई सपना बाकी नहीं बचता। बस, अपना पेट बचता है जो दिन-ब –दिन बढ़ती जरूरतों,इच्छाओं और चीजों के साथ-साथ बढ़ता जाता है और किसी तरह पूरा नहीं भरता।"[2] औपनिवेशिक समय में शत्रू हमारे सामने था लेकिन अब नवउपनिवेशवाद में आकर शत्रू हमारे सामने नहीं है।

शान्तनु एवं किशोर उनके बचपन में यानी स्वाधीनता के पूर्व अंग्रेजों की सेवा में रत पूर्वजों से और उनकी सम्पत्तियों से घृणा करते थे। लेकिन स्वतंत्रता के बाद वे दोनों बिल्कुल बदल गये। किशोर बाबू अपने घर का स्थानान्तरण उत्तर कलकत्ता से दक्षिण कलकत्ता की ओर करता है जहाँ पहले अंग्रेज रहते थे। किशोर ने समय के अनुसार हर चीज़ को नयी शक्ल दे दी और आधुनिक रौनक लाने केलिए घर की नयी साज-सज्जा भी की। बाइपास ओपरेशन के बाद उन्हें वर्तमान स्थिति का एहसास होता है। तब किशोर पंडितजी से कहता है- "ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत को जितना लूटा था,उससे हजारों गुना लूट अब विदेशी कम्पनियँ हमारे देश में कर रही हैं। डॉलर की तुलना में रूपये का दाम इतना गिरा दिया है कि यहाँ से एक करोड़ का माल विदेश जाता है, तो उसकी कीमत मिलती है एक – चौथाई यानी सिर्फ पच्चीस लाख।..हम आर्थिक रूप से फिर गुलाम हो गए हैं।"[3]

नवउपनिवेशवाद से जुडी हुई है भूमंडलीकरण एवं वैश्वीकरण। प्रभा खेतान के अनुसार "भूमंडलीकरण वह प्रक्रिया है जो वित्त-पूँजी के निवेश, उत्पादन और बाज़ार द्वारा राष्ट्रीय सीमा में वर्चस्व ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सीमा से परे भूमंडलीय आधार पर निरंतर अपना प्रसार करना चाहती है। इसका निर्णय क्षेत्र सारी दुनिया है।"[4] भूमंडलीकरण का परिणाम यह हुआ कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों को नियंत्रित करने में राष्ट्र असमर्थ हुआ। भूमंडलीकरण से उत्पन्न है ब्रांड संस्कृति। अब हमारी उपभोग संस्कृति में बढ़ावा आ गया है और हम प्रत्येक ब्रांड के पीछे भागने लगे है। ब्रांडों की अवधारणा को विकसित करने में विपणन और विज्ञापन एजेंसियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रभा खेतान के अनुसार "ब्रांड का अर्थ केवल एक छपा हुआ रंगीन बिल्ला नहीं, जिसे उत्पादित वस्तु पर चिपका दिया जाए। ब्रांड का मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक आयाम है। ब्रांड केवल उत्पादित वस्तु का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि अपनी साख भी रखता है। यह अपने बारे में उपभोक्ताओं से संवाद स्थापित करता है।"[5] अब ब्रांड की चीजें खरीदने से ही इज्जत मिलती है। उपन्यास में एक सन्दर्भ है - "बच्चे लोग कोई देशी चीज़ इस्तेमाल करना ही नहीं चाहते। गनीमत है कि अब कलकत्ते में थियेटर रोड पर लाकौस्टे, ऐरो, पियरे कार्डिन- सबकी शर्टों की दुकानें खुल गई हैं, वरना पहले बच्चों को पहनने लायक कपड़े खोजने की इतनी सहूलियत कहाँ थी? यों किशोर बाबू की पत्नी को तो

समझ में नहीं आता कि इन शर्टों में ऐसा क्या रखा है कि इनके इतने रूपये दिये जाएँ पर बच्चे बिना नामी 'ब्रांड' के कोई चीज़ खरीदते नहीं।"[6]

वास्तव में सामान्य आदमी उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद के चक्र के नीचे फंस गया है। इस विषम परिस्थिति से मुक्ति असंभव बन गयी है। उदारीकरण तथा निजीकरण के फलस्वरूप जन्मे बाज़ारवाद ने पूरी दुनिया में अपना कब्जा कर लिया है। बाज़ार के कारण सामाजिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और संबंधो में बदलाव आ रहा है। सिर्फ आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र पर भी अनेक प्रकार के परिवर्तन आए हैं। एक समय ऐसा था जब बाज़ार मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार बनता था। लेकिन आज बाज़ार की आवश्यकता के अनुसार मनुष्य को ढाला जा रहा है। ।रोहिणी अग्रवाल ने अपनी पुस्तक **'समकालीन कथा साहित्य सरहदें और सरोकार'** में बाज़ार संबंधी विचार इस प्रकार व्यक्त किया है -"बाज़ार मुद्रा और मुनाफे का कारोबार मात्र नहीं है। अपनी अर्थ-व्याप्ति में यह सत्ता, वर्चस्व और आतंक को बनाए रखने के लिए विशुद्ध राजनीतिक - सांस्कृतिक हथकंडों का इस्तेमाल करता है जिन्हें 'फूट डालो और राज्य करो' की कुत्सित चाल में अनूदित किया जा सकता है।"[7] बाज़ार का छद्म व्यवहार उपभोक्ताओं को इतना लुभाता है कि वे अपनी जेब उन्हें समर्पित कर देते हैं। किशोर के लडके का बड़ा सपना है उसके पास एक गाड़ी हो। इस सपने को बेचने का कार्य बाज़ार एवं विज्ञापन कम्पनियाँ करती हैं। अब सब कुछ बिकाऊ हो गया है यहाँ तक कि फ्रीडम भी। लडके ने किशोर बाबू के हाथों में चाबी रखी । चाबी देखकर किशोर बाबू हतप्रभ हो गए- "यह क्या है?, 'फ्रीडम' लडके ने हँसते हुए कहा। 'फ्रीडम?' किशोर बाबू को बहुत बुरा लगा। एक चाबी से स्वतंत्रता मिल जाती है, तो इतने लोगों को जान देने की क्या जरूरत थी ? ऐसे शब्द के साथ इस तरह का हल्का मज़ाक उन्हें बहुत खराब लगा। विज्ञापनों के युग ने सबकी मति हर ली है- जैसे-तैसे शब्दों का इस्तेमाल।"[8] बाज़ार हमें उसके मनमोहक जाल में फँसाकर रखता है। बाज़ार विज्ञापन के माध्यम से यह भ्रम पैदा कर रहा है कि वे जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं उससे बेहतर जीवन कर्ज की आसान किस्तों पर जी सकते हैं। इस प्रभाव में लडका भी आ जाता है। किशोर बाबू ने जब रूपये के बारे में पूछा तो लडके ने कहा कि "पापा, रुपए किसी से माँगने नहीं पड़े। आजकल सौ प्रतिशत फाइनेंस पर गाड़ी मिलती है। बस, किस्तों में रकम चुका देंगे।"[9]

धर्म के नाम पर जो बाजारीकरण हो रहा है ,उसका उल्लेख भी **कलि कथा वाया बाइपास** में है। पहले धर्म के आधार पर ही विभाजन हुआ था, उसके बाद कई साल बीत गये, परन्तु आज़ादी के पचास साल बाद भी हम सांप्रदायिकता से मुक्त नहीं हैं। वैश्वीकरण के चलते, सांप्रदायिकता और भी विकसित हो गयी है। आज

सांप्रदायिकता के कई रूप देख सकते हैं। वास्तव में भारत में विभाजन के साथ समस्या और भी उलझ गयी। धर्म के कारण पहले जो साप्रदायिक भावना लोगों में थी वह बाद में साप्रदायिक दंगों के रूप में बदल गयी। अंग्रेजों ने भारत एवं अन्य देशों को अपने कब्जे में रखा था। सारे देशों में इस नवऔपनिवेशिक ताकत के प्रति विद्रोह उत्पन्न हुई। इस विद्रोह के चलते अंग्रेजों को पीछे हटना पडा, लेकिन वे लोग धर्म एवं सांप्रदायिकता के द्वारा फूट डालकर भारत से चले गये थे। वे भले ही हमें आज़ादी दे दी, लेकिन उनका उद्देश्य विभाजन के द्वारा हमारा विनाश था। सांप्रादयिकता वास्तव में एक विषैली चीज़ है। प्रत्येक संप्रदाय दूसरे संप्रदाय को अपने शत्रु मानकर उसे नष्ट करना या उसे देश से बाहर कर देना चाहता है। संप्रदाय शब्द बहुधा धर्म के साथ जुड़कर आता है। लेकिन धर्म एवं संप्रदाय में अन्तर है। धर्म में व्यापक एवं विशाल विचारधारा समाहित होती है तो संप्रदाय सीमित एवं खंडित विचारधारा वाले समूह के लिए प्रयुक्त होता है। संप्रदाय का संबंध और आधार धर्म में ही केंद्रित होता है,परंतु जब इसमें राजनीति का प्रवेश होता है तो वह सांप्रदायिकता बन जाता है। वोट के लिए राजनीतिज्ञ आज सांप्रदायिकता को समाज में फैला रहे हैं। वास्तव में सन् 1947 में देश-विभाजन के समय में सांप्रदायिकता उपजी है। उस समय अनेक सांप्रादायिक दंगे भी उत्पन्न हुए। सन् 1992 में बाबरी-विध्वंस के समय में उपजी सांप्रदायिकता आज कट्टर साप्रदायिकता बन गयी है।

इस उपन्यास में अलका जी ने सांप्रदायिकता का चित्रण बाबरी-विध्वंस एवं 16 अगस्त को कलकत्ते पर हुए दंगे के माध्यम से किया है। सांप्रदायिकता में प्रेम भी है और युद्ध भी। प्रेम अपने संप्रदाय के लोगों के प्रति होता है तो युद्ध एवं विद्वेष दूसरे संप्रदायों के प्रति होता है। उपन्यास में अलका जी ने लिखा है- "अमोलक की मौत 6 दिसम्बर,1992 को अयोध्या में निश्चित थी, ...लेकिन यह क्या सचमुच निश्चित था कि उसकी मौत ऐसे ही लोगों के हाथों होनी थी ..... उसी तरह जैसे गांधी की? और प्रमाणित क्या हुआ इन मौतों से ? क्या यही कि आदमी की एक के प्रति प्रतिबद्धता दूसरे के प्रति उसकी नफरत से तय होती है? रामजी से प्रेम = मुसलमानों से नफरत? , गांधी से नफरत = हिन्दूपन से प्रेम? क्या धर्म की दीवार इतनी मजबूत है कि उसमें खिड़कियाँ बन नहीं सकतीं ?"[10]

भूमंडलीकरण के चलते साप्रदायिकता को और भी बढावा मिल गया है। इस सन्दर्भ में अलका जी हमसे पूछती हैं कि " तो क्या एक दुनिया ऐसी ही बनानी होगी जहाँ एक जैसे आदमी ही एक साथ रहें – एक जैसे रंगवाले, एक जैसे धर्मवाले, एक जैसी भाषावाले – जैसे बद्रिका चिड़िया को अलग पिजरे में रखा जाता है, वरना वे दूसरी चिड़ियों को मार डालती हैं या खुद मर जाती हैं।"[1]

अलका जी ने भूमंडलीकरण की भीषणता को समझकर इसका विरोध अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है।

निष्कर्ष : आज सब कहीं बहुराष्ट्रीय कंपनियों का अधिकार जम गया है। भूमंडलीकरण के इस दौर में हमारी संस्कृति का ह्रास हो रहा है और मनुष्य वस्तु में तब्दील होता जा रहा है। उदारीकरण, निजीकरण,भूमंडलीकरण आदि के नाम पर विदेशी लोग हमारे बाज़ार हडप लेते हैं। इसलिए आज लोग एवं रचनाकार भूमंडलीकरण जैसी जन विरोधी शक्तियों के षड्यंत्र को समझकर उसके खिलाफ अपना विद्रोह ज़ाहिर करते हैं। अलका सरावगी के उपन्यास **'कलिकथा वाया बाइपास'** में भी नवउपनिवेशवाद के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर बुलन्द है।

सन्दर्भ

1. डॉ. एन. मोहनन, 2007, समकालीन हिन्दी उपन्यास, शिल्पायन, नई दिल्ली, पृ : 26
2. अलका सरावगी, 1998, कलिकथा वाया बाइपास,आधार प्रकाशन,पंचकुला हरियाणा, पृ :19
3. वही, पृ :174
4. प्रभा खेतान, 2010 ,भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ : 15
5. वही, पृ : 58
6. अलका सरावगी, 1998, कलिकथा वाया बाइपास,आधार प्रकाशन,पंचकुला हरियाणा, पृ :227
7. रोहिणी अग्रवाल, 2012, समकालीन कथासाहित्य सरहदें और सरोकार, आधार प्रकाशन, पंचकुला हरियाणा, पृ : 32
8. अलका सरावगी, 1998, कलिकथा वाया बाइपास, आधार प्रकाशन, पंचकुला हरियाणा, पृ :212
9. वही, पृ :213
10. वही, पृ :176
11. वही, पृ :176